इकाई 9 न्यायपालिका*

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 भारत में न्यायपालिका की उत्पत्ति

9.3 सर्वोच्च न्यायालय

- 9.3.1 सर्वोच्च न्यायालय की रचना और नियुक्तियाँ
- 9.3.2 कार्यालय
- 9.3.3 वेतन
- 9.3.4 अधिकार (उन्मुक्तियाँ)

9.4 सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र

- 9.4.1 आरंभिक क्षेत्राधिकार
- 9.4.2 अपीलीय क्षेत्राधिकार
- 9.4.3 परामर्शवादी क्षेत्राधिकार
- 9.4.4 न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार

9.5 उच्च न्यायालय

- 9.5.1 उच्च न्यायालय का गठन (रचना)
- 9.5.2 अधिकार क्षेत्र

9.6 अधीनस्थ न्यायालय

9.7 न्यायिक समीक्षा

9.8 न्यायिक सुधार

9.9 सारांश

9.10 उपयोगी संदर्भ

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान सकेंगे :

- भारत में न्यायिक व्यवस्था की उत्तपत्ति का पता लगाना;
- भारत में न्यायालयों की रचना का वर्णन करना;
- सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों के कार्यों एवं क्षेत्राधिकारों की व्याख्या करना; और
- न्यायिक पुनरावलोकन की अवधारणा एवं मौलिक अधिकारों की रक्षा के महत्व को समझना।

*प्रोफेसर विजयशेखर रेड्डी, राजनीतिक विज्ञान संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली, बी.पी.एस.ई.–212, इकाई 12 से अनुकूलित है।

9.1 प्रस्तावना

संवैधानिक सरकार के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत कानून निर्माण, कानूनों की व्याख्या एवं कानूनों का क्रियान्वयन करने के लिए तीन संस्थाऐं है। (1) विद्यायिका (2) कार्यपालिका एवं (3) न्यायपालिका। न्यायपालिका स्वतंत्र एवं निष्पक्ष होती है तथा यह कार्यपालिका एवं विधायिका की शक्तियों के दुरूपयोग पर अंकुश लगाती है तथा नियंत्रण रखती है। न्यायपालिका का निर्णय अंतिम माना जाता है। संघीय व्यवस्था में, न्यायपालिका केन्द्र एवं राज्यों के बीच विवादों को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के कार्यों एवं महत्व को देखते हुए कई प्रकार के कदम उठाये गये है ताकि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बरकरार रहे।

9.2 भारत में न्यायपालिका की उत्पत्ति

भारत में न्यायपालिका की उत्पत्ति औपनिवेशिक काल से मानी जाती है। 1773 में रेगूलेटिंग एक्ट (अधिनियम) पारित होने के पश्चात् भारत में प्रथम सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना हुई। यह कलकता में स्थापित किया गया जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश एवं तीन अन्य जज थे। इनकी नियुक्ति ब्रिटिश क्राउन के द्वारा की गयी थी। इसे राजा का न्यायालय बनाया गया था न कि कंपनी का कोर्ट। इस कोर्ट में राजा के क्षेत्राधिकार भी शामिल थे। जहाँ पर भी न्यायालय बनाये गये वहीं राजा के अधिकार निर्धारित किये गये। पहली बार सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना मद्रास में हुई तथा इसके बाद बंबई में। इस काल में न्यायिक व्यवस्था दो प्रकार की थी, एक प्रसीडेंसी के अंदर सर्वोच्च न्यायालय तथा प्रांतों के अंदर सदर न्यायालय। सर्वोच्च न्यायालय के अंदर अंग्रेजी कानून एवं प्रक्रियाऐं लागू थी जबकि सदर न्यायालयों में व्यक्तिगत कानून तथा विधिक कानून लागू थे। 1861 के उच्च न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत इन दोनों को मिलाकर एक कर दिया गया। इस अधिनियम से सर्वोच्च न्यायालय को कस्बों में बदला गया। कलकत्ता, बंबई और मद्रास में उच्च न्यायालयों की स्थापना की गयी। लेकिन सबसे बड़ा अपील (Appeal) न्यायालय प्रीवी परिषद थी जोकि न्यायिक समिति के अधीन थी।

9.3 सर्वोच्च न्यायालय

संपूर्ण न्यायव्यवस्था तीन स्तरों में विभाजित है। सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय है, इसके नीचे उच्च न्यायालय तथा सबसे नीचे सत्र न्यायालय स्थापित है। सर्वोच्च न्यायालय कानून का सर्वोत्तम न्यायालय है। संविधान का मानना है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून सबके लिए बाध्यकारी होगा विशेषकर भारतीय क्षेत्र के सभी छोटे न्यायालयों में। सर्वोच्च न्यायालय के नीचे उच्च न्यायालय होते हैं जो कि राज्यों में स्थापित होते हैं। इन न्यायालयों में जिला सत्र न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालय एवं अन्य छोटे न्यायालय भी शामिल है। संघीय व्यवस्था में न्यायपालिका की महत्ता को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय को भारतीय संविधान की व्याख्या करने का अंतिम अधिकार प्राप्त है। न्यायिक प्रावधानों की रचना करते वक्त संविधान सभा ने न्यायालय की स्वतंत्रता, सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति तथा न्यायिक समीक्षा जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया।

9.3.1 संरचना एवं नियुक्तियाँ

सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायधीश के अलावा 26 अन्य न्यायाधीश होते हैं। जब सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गयी थी उस समय मात्र आठ न्यायाधीश थे। अब इसकी संख्या बढ़कर 26 हो गयी है। भारत के राष्ट्रपति द्वारा इनकी नियुक्ति की जाती है लेकिन राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री एवं मंत्रीपरिषद की सलाह पर नियुक्ति करते हैं।

संविधान के अनुच्छेद 124(2) में राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति मंत्रीपरिषद की सलाह के पश्चात् करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति विभिन्न न्यायाधीशों के साथ विचार–विमर्श करने के बाद करते हैं। सांवैधानिक प्रावधानों के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राजनीतिक विवाद के कारण बन गयी है। यहाँ पर यह जानना जरूरी है कि 1973 में जब सरकार ने न्यायाधीश एस.एस.रे को भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया तब उन्हें चार जजों को दूर रख कर किया गया। उस वक्त के मुख्य न्यायाधीश एस.एम.सीकरी की सिफ़ारिशों को भी सरकार ने नहीं माना था। इसी राजनीतिक हस्तक्षेप से बचने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति के लिए कुछ योग्यताऐं निर्धारित की गयी है। ये योग्यताऐं इस प्रकार हैः– वह व्यक्ति भारत का नागरिक होना चाहिये, वह किसी उच्च न्यायालय में पाँच वर्ष तक कार्य किया हो, या वह किसी उच्च न्यायालय में दस वर्ष तक वकालत की हो। या फिर वह राष्ट्रपति की राय में एक वरिष्ठ और प्रतिष्ठित विधिवेत्ता हो।

न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए कोलेजियम प्रणाली (अधिशासी) समिति या मंडल की प्रकृति बड़ी अद्भुत है। यह इसलिए भी काफी लोकप्रिय है क्योंकि यह न्यायाधीशों को चयन करने के लिए न्यायाधीश ही होते हैं। इस प्रणाली की शुरूआत 1990 में दो महत्वपूर्ण निर्णयों के बाद हुई थी। इस प्रणाली में एक निकाय या संस्था होती है जिसमें कुछ वरिष्ठ जज होते हैं वो सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति एवं तबादले के लिए जिम्मेदार होते हैं।

9.3.2 कार्यकाल

एक बार नियुक्त होने के बाद न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु पूरी होने तक अपने पद पर बने रहते हैं। सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश या तो अपने पद से इस्तीफा दे सकते हैं या फिर उन्हें दुर्व्यवहार या काबिल ना होने पर अपने पद से हटाया जा सकता है। हटाने की प्रक्रिया को महाअभियोग कहते हैं। संविधान के प्रावधानों के मुताबिक इसके लिए संसद में एक प्रस्ताव पारित करना पड़ेगा और उस पर दो–तिहाई बहुमत की आवश्यकता होगी। 1991 में एक जज के खिलाफ़ महाभियोग का प्रस्ताव संसद में पेश किया गया था। इसमें सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश वी. रामास्वामी शामिल थे। इनके कार्यकाल में कई प्रकार की अनियमितताऐं पायी गयी थी इसलिए तीन सदस्यीय जाँच समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने यह पाया कि बड़े स्तर पर पद का दुरूपयोग किया गया है तथा इसे जनता के हित को भी चोट पहुँची है और यह पूरी तरह से दुर्व्यवहार का मामला है। इस प्रकार न्यायाधीश वी. रामास्वामी ऐसे पहले जज थे जिनके खिलाफ महाभियोग की कार्यवाही की गयी थी। जज रामास्वामी ने हालांकि यह आरोप लगाया कि इस प्रस्ताव में कई खामियाँ थी इसलिए यह प्रस्ताव 1993 में गिर गया था और पास नहीं हुआ था। इसके पक्ष में कुल 401 में से 196 मत गिरे थे तथा बाकी 205 मतदान प्रक्रिया से बाहर रहे थे। हालांकि बाद में जज रामास्वामी अपने पद से इस्तीफा दे दिया था।

9.3.3 वेतन

न्यायाधीशों का सबसे महत्वपूर्ण तत्व जो कि उनकी स्वतंत्रता को निर्धारित करते है वह है उनके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला वेतन। उनका वेतन बहुत अधिक निर्धारित किया गया है ताकि वे स्वतंत्र, कुशल एवं निष्पक्ष तरीके से कार्य कर सकें। वेतन के अलावा सभी जजों को आधिकारिक आवास भी दिया जाता है जो पूरी तरह मुफ्त होता है। संविधान में यह भी प्रावधान किया गया है कि जजों की तनख्वाह बदली नहीं जायेगी, सिर्फ वित्तीय आपातकाल स्थिति में ही उनका वेतन बदला जा सकता है। जजों का वेतन भत्ते एवं अन्य सुविधाऐं भारत की संचित निधी से दिये जाते हैं।

9.3.4 उन्मुक्तियाँ (अधिकार)

राजनीतिक विवादों से बचने के लिए संविधान ने जजों को कुछ विशेष अधिकार (उन्मुक्तियाँ) दिये हैं ताकि उन्हें आलोचनाओं से एवं अपने आधिकारिक कार्यों की खामियों से बचाया जा सके। न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे व्यक्ति के खिलाफ अवमानना की कार्यवाही कर सकता है जो जजों के आधिकारिक कार्यों में बाधा उत्पन्न करता है। यहाँ तक कि संसद में भी जजों के बर्ताव पर कोई चर्चा नहीं हो सकती सिवाय उनको पद से हटाने वाले प्रस्ताव को छोड़कर।

अभ्यास के प्रश्न 1

नोट: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इस इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए क्या–क्या योग्यताऐं होनी चाहिए?

.....

.....

.....

.....

.....

2) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

9.4 सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

संविधान के अनुच्छेद 141 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि उसके बनाये कानून भारत में सभी न्यायालयों पर लागू होंगे। सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। (1) प्रारंभिक क्षेत्राधिकार, (2) अपीलीय क्षेत्राधिकार (3) परामर्शवादी क्षेत्राधिकार तथा (4) पुनरावलोकन संबंधी क्षेत्राधिकार।

9.4.1 प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय को प्रारंभिक क्षेत्राधिकार की शक्ति पूर्व में संघीय न्यायालय से प्राप्त हुई है। संघीय व्यवस्था में विशेषकर भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकारें संविधान से शक्तियाँ अर्जित करती है। केन्द्र एवं राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन के विवाद को केवल स्वतंत्र न्यायपालिका ही हल निकाल सकती है। अनुच्छेद 131 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को विशेष अधिकार दिये गये है। यह विभिन्न राज्यों के मध्य या केन्द्र एवं राज्यों के मध्य विवादों का निपटारा करती है। जब हम सर्वोच्च न्यायालय के विशेष अधिकार की

बात करते हैं तो इसका मतलब है भारत में अन्य किसी न्यायालय के पास ऐसे अधिकार नहीं है। इसी तरह सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार का मतलब है कि सभी विवादित पक्ष संघ की इकाई है। आस्ट्रेलिया एवं संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति भारत के सर्वोच्च न्यायालय को विभिन्न राज्यों के निवासियों के बीच विवादों को हल करने का प्रारंभिक अधिकार नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय के पास मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए भी विशेष अधिकार प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत हर नागरिक को यह अधिकार है कि वह अध्याय 3 में दिये गये अधिकारों का प्रवर्तन कराने के लिए समुचित कार्रवाई द्वारा उच्चतम न्यायालय का द्वार खटखटा सके। उच्चतम न्यायालय अपनी आरंभिक अधिकारिता में याचिका की सुनवाई कर सकता है। उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति दी गयी है वह प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिये, ऐसे निर्देश या आदेश या रिट जिनके अंतर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार–पृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं जो भी समुचित हो, जारी कर सके। कोर्ट ऐसे मामलों में व्यक्ति को छोड़ सकता है यदि उसे ऐसा लगे कि यह गैर कानूनी है। अधिकार पृच्छा वाली याचिका पर कोर्ट यह आदेश दे सकता है कि जन अधिकारियों को अपनी कानूनी जिम्मेदारी ठीक से निभानी चाहिये। प्रतिषेध या निषेध वह याचिका है जिसके द्वारा कोर्ट किसी ट्रिबूनल या प्राधीकरण के कामों को रोक सकता है। परमादेश वह याचिका है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को अपने पद से हटने का आदेश दे सकता है। इन याचिकाओं के अलावा सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका को समुचित निर्देश एवं आदेश भी दे सकता है।

9.4.2 अपीलीय क्षेत्राधिकार

भारत में सर्वोच्च न्यायालय सभी न्यायालयों में सबसे बड़ा अपीलीय न्यायालय है। इसे सभी संवैधानिक मामलों में अपीलीय अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा सभी सिविल, आपराधिक, संपत्ति मामले, मृत्यु दंड तथा अन्य विशेष मामलों में अपीलीय अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 132 में यह प्रावधान दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय में वे सभी केस जो कि उच्च न्यायालय में विचाराधीन है उस पर अपील कर सकते हैं। यदि ऐसे केस जो कि संविधान की व्याख्या से संबंधित हो वे भी मामले अपीलीय अधिकार में आते हैं। यह अपील उच्च न्यायालय पर निर्भर है यदि वह यह प्रमाणित करता है कि उक्त अपील वांक्षनीय है, यदि नहीं तो फिर सर्वोच्च न्यायालय इसे विशेष लीव अपील प्रदान कर सकता है। अनुच्छेद 133 के अंतर्गत सभी सिविल केस की सुनवायी सर्वोच्च न्यायालय में की जायेगी, संविधान में यह प्रावधान है कि उच्च न्यायालय के अधीन सिविल कार्यवाही की अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जाती है। उच्चतम न्यायालय की अपीलीय आधिकारीता, दीवानी, फौजदारी तथा संवैधानिक मामलों पर लागू होती है। अनुच्छेद 134 के अधीन किसी उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध कोई अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। यह अधिकारक्षेत्र सिर्फ तीन श्रेणी के मामलों पर लागू होता है। (क) उच्च न्यायालय ने किसी अभियुक्त को दोषमुक्ति के आदेश को पलट दिया है और उसको मृत्युदंड का आदेश दे दिया है या (ख) अपने अधिकार के अधीन किसी न्यायालय से किसी मामले के विचारण के लिये अपने पास मंगा लिया है और ऐसे विचारण में अभियुक्त को सिद्धदेष ठहराया है और उसे मृत्युदंड का आदेश दिया है। (ग) अनुच्छेद 134 के अधीन किसी उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध कोई अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है, यदि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 134 के अधीन प्रमाणित कर देता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने योग्य है। अंत में, अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय अपने विवेकानुसार भारत के राज्य क्षेत्र के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद का मामले में पारित किये गये या दिये गये किसी निर्णय, डिक्री, अवधारण, दंगदेश या आदेश की अपील के लिए विशेष इजाजत दे सकेगा।

9.4.3 परामर्श की अधिकारिता

संविधान का अनुच्छेद 143 सर्वोच्च न्यायालय को परामर्श की अधिकारिता प्रदान करता है। सार्वजनिक महत्व की विधि या तथ्य के किसी ऐसे प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की राय राष्ट्रपति माँग सकता है जिसके बारे में उसका विचार हो कि ऐसी राय प्राप्त करना है। परामर्शवादी भूमिका सर्वोच्च न्यायालय की साधारण भूमिका से अलग है। इसके तीन प्रमुख कारण है। (1) यदि दो पक्षों में कोई मुकदमा न हो, (2) परामर्शीय राय सरकार पर बाध्य नहीं होगी, तथा (3) कोर्ट का यह निर्णय लागू न माना जाये। सर्वोच्च न्यायालय की परामर्श तभी तक मान्य है जब तक कि किसी महत्वपूर्ण मसलों पर उसकी राय नहीं माँगी गयी हो। इसी प्रकार यह सरकार के लिए भी एक अच्छा विकल्प होता है किसी राजनीतिक मुद्दों को हल करने के लिए।

9.4.4 न्यायिक पुनरावलोकन (समीक्षा) का अधिकार

सर्वोच्च न्यायालय को किसी भी निर्णय को समीक्षा करने का अधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के न्यायालय से अधिक शक्तिशाली है। अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय केवल उन मामलों की सुनवाई करता है जो कि संघ से संबंधित किसी कानून अथवा संघ से इसका तात्पर्य यह है कि सर्वोच्च न्यायालय अपने किसी भी निर्णय आदेश की समीक्षा कर सकता है। जबकि भारत में सर्वोच्च न्यायालय न केवल संविधान की व्याख्या करता है बल्कि वह दीवानी एवं फौजदारी जैसे मामलों में भी सुनवाई करता है। यह किसी सीमा की बाध्यता के बिना ऐसे मामलों को अपने पास रख सकता है जो भारत में किसी अधिकरण के पास आया हो। परामर्शवादी अधिकारिता भी भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को शक्तिशाली बनाता है जो कि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में नहीं है। इन शक्तियों के बावजूद भारतीय सर्वोच्च न्यायालय हमारे संविधान से निर्मित है तथा वह पूर्ण रूप से निर्भर है। केन्द्रिय विधायिका संविधान में संशोधन करके इन पर अंकुश लग सकती है। इसके अतिरिक्त, इन सभी शक्तियों को निलंबित भी किया जा सकता है यदि देश में आपातकाल की घोषणा हो गयी हो।

9.5 उच्च न्यायालय

संविधान में उच्च न्यायालय का भी प्रावधान किया गया है जो कि राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होता है। संविधान के भाग छः के अध्याय 5 में अनुच्छेद 214 से 231 तक उच्च न्यायालय के संगठन एवं कार्यों के प्रावधान दिये गये हैं। संविधान के अनुच्छेद 125 में यह कहा गया है कि प्रत्येक राज्य का एक उच्च न्यायालय होगा। इन न्यायालयों को भी संवैधानिक दर्जा प्राप्त होता है। संसद को यह अधिकार है कि वह दो या इससे अधिक राज्यों का एक सामूहिक उच्च न्यायालय गठित कर सकती है। उदाहरण के लिये पंजाब और हरियाणा का एक ही उच्च न्यायालय है। इसी तरह, असम, नागालैण्ड, मीजोरम और अरुणाचंल प्रदेश का भी एक ही उच्च न्यायालय है।

संघ शासित प्रदेशों में संसद किसी उच्च न्यायालय को इसके अधीन कर सकती है या फिर अलग से एक नया उच्च न्यायालय सृजित कर सकती है। दिल्ली जो कि एक केन्द्र शासित प्रदेश था उसका अपना एक उच्च न्यायालय है जबकि मद्रास उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में पांडिचेरी है, केरला, उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में लक्षद्वीप है, मुंबई उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में दादरा एवं नागर हवेली, कोलकाता उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायाालय के अधिकार क्षेत्र में चंडीगढ़ आता है।

9.5.1 उच्च न्यायालय की रचना या ढ़ाँचा

सर्वोच्च न्यायालय से भिन्न, उच्च न्यायालय के न्यायधीशों की कोई न्यूनतम संख्या नहीं होती है। राष्ट्रपति समय–समय पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या निर्धारित करते हैं। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं। राष्ट्रपति इसके लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश एवं राज्यों के राज्यपाल से सलाह लेते है। न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश की सलाह लेते हैं। संविधान में अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति का भी प्रावधान किया गया है। लेकिन ये नियुक्तियाँ अस्थायी होती है जो कि दो वर्ष से अधिक नहीं होती है। कोलेजियम व्यवस्था के अंतर्गत भी न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान है। इसमें शीर्ष न्यायालय के वरिष्ठ जज नामों की सिफारिश करता है।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कार्यकाल 62 वर्ष तक होता है। वह अपना स्तीफा देकर पद से हट सकता है। राष्ट्रपति किसी भी जज को दुराचार के आरोप में अपने पद से हटा सकता है। यह प्रक्रिया सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान है।

9.5.2 अधिकार क्षेत्र

उच्च न्यायालय का प्रारंभिक क्षेत्राधिकार मौलिक अधिकारों को लागू करना, केन्द्र एवं विधान सभा के चुनाव से संबंधित विवादों का निपटारा करना, तथा राजस्व मामले भी शामिल है। अपीलीय क्षेत्राधिकार दीवानी एवं फौजदारी दोनों मामलों में होता है। दीवानी मामलो में उच्च न्यायालय या तो प्रथम अपील कोर्ट है या दूसरा। जबकि फौजदारी मामलों में उच्च न्यायालय किसी विशेष केस की सुनवायी करता है। इन दोनों के अतिरिक्त उच्च न्यायालय को चार अन्य शक्तियाँ भी प्राप्त है :

1) मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए याचिका दायर करने की शक्ति होती है। यह अधिकार सर्वोच्च न्यायालय से भी बड़ा है। यदि मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है तो वह याचिका दायर कर सकता है।

2) सभी न्यायाधिकरणों के कार्यों का निरीक्षण करना विशेषकर सशस्त्र सेना से संबंधित कार्यों को छोड़कर। यह समय–समय पर नियम एवं कानून बना सकता है तथा कुछ दिशा निर्देश भी जारी करता है ताकि न्यायालय के कार्यों को प्रभावशाली बनाया जा सके।

3) संविधान की व्याख्या से संबंधित केसों को अधीनस्थ न्यायालय से अपने पास स्थानांतरित करना।

4) उच्च न्यायालय के अधिकारियों एवं नौकरों को नियुक्त करने का भी अधिकार है।

कुछ मामलों में उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र प्रतिबंधित है। जैसे, इसे उन मामलों में कोई अधिकार नहीं है जो केन्द्र के एक्ट के अंतर्गत आते हो, चाहे वह मौलिक अधिकार के उल्लंघन का मामला ही क्यों न हो।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इस इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार कौन–कौन से हैं? किस क्षेत्र में इसे सबसे अधिक अधिकार है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 अधीनस्थ न्यायालय

उच्च न्यायालय के अंतर्गत एक प्रकार की क्रमबद्धता है। इसे संविधान में भी दर्शाया गया है जिन्हें हम अधीनस्थ न्यायालय कहते हैं। क्योंकि ये न्यायालय राज्य सरकार के कानूनों द्वारा बनाये गये है इसलिए इनका नाम एवं पद अलग–अलग राज्य में अलग–अलग है। लेकिन, इनके मूल ढाँचे में एकरूपता होती है।

राज्य जिलों में विभाजित होता है। प्रत्येक जिले में एक जिला न्यायालय होता है। इन जिला न्यायालयों के अधीन लघु न्यायालय होते हैं जैसे, अतिरिक्त जिला न्यायालय, उप–न्यायालय, मुन्सिफ मजिस्ट्रेट न्यायालय, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, इत्यादि। सबसे निचले स्तर पर पंचायत न्यायालय होते हैं। जैसे न्याय पंचायत, ग्राम पंचायत, पंचायत अदालत इत्यादि। लेकिन ये न्यायालय आपराधिक मामलों के अंतर्गत नहीं आते हैं।

जिला न्यायालय का प्रमुख कार्य है अधीनस्थ न्यायालयों की अपील को सुनना। हालांकि न्यायालय प्रारंभिक मामलों में स्वयं संज्ञान ले सकता है जैसे, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, संरक्षक अधिनियम, तथा भूमि अधिग्रहण अधिनियम इत्यादि। संविधान अधीनस्थ न्यायालयों की स्वतंत्रता को भी सुनिश्चित करता है। जिला न्यायालयों के जजों की नियुक्ति राज्यपाल करता है उच्च न्यायालय की सलाह पर। ऐसे जज के पास सात वर्षों का वकालात का अनुभव होना चाहिए या फिर उसे उच्च किसी भारतीय न्यायालय में सेवा प्रदान करने का अनुभव होना चाहिए। जिला न्यायालय के अलावा अन्य न्यायालय में नियुक्ति के लिए राज्यपाल उच्च न्यायालय या राज्य लोक सेवा आयोग से सलाह लेता है। उच्च न्यायालय इन जिला न्यायालयों पर नियंत्रण रखता है विशेषकर पद–स्थापन, पदोन्नती, छुट्टियाँ प्रदान करना इन मामलों में या राज्य न्यायिक सेवाओं से संबंधित मामलों में उच्च न्यायालय नियंत्रण रखता है।

9.7 न्यायिक पुनरावलोकन (समीक्षा)

न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ है किसी भी निर्णय की समीक्षा करना। न्यायिक पुनरावलोकन का उन देशों में काफी महत्व है जहाँ पर लिखित संविधान है, क्योंकि उन देशों में सीमित सरकार की अवधारणा लागू होती है। न्यायिक पुनरावलोकन इस अर्थ में माना जाता है कि इससे किसी विधायिका की शक्तियों की मान्यता कहाँ तक उचित है तथा सरकार के कार्यों की वैधता कहाँ तक है। विशेषकर संविधान के प्रावधानों के अनुरूप सरकार के कार्य संपन्न हो रहे हैं या नहीं इन सब कारणों के लिए न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ दी गयी है।

इंगलैण्ड में लिखित संविधान नहीं है। यहाँ पर संसद ही सर्वोच्च सत्ता है। यहाँ पर न्यायालय को संसद के द्वारा पारित कानूनों की समीक्षा करने का अधिकार नहीं है। हालांकि इंग्लैण्ड में कोर्ट को कार्यपालिका के कार्यों की वैधता की समीक्षा कर सकती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायापालिका को कार्यपालिका कार्यों की समीक्षा का अधिकार दिया गया है। यह सभी कार्यों की समीक्षा करता है कि पूरी प्रक्रिया अपनायी गयी या नहीं।

भारत में, यदि कोई कार्य संविधान के मुताबिक नहीं है तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है। संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार एवं संवैधानिक उपचारों का अधिकार इसी संदर्भ में है।

सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा का अधिकार संविधान एवं अन्य विधायी कार्यों तक लागू होता है। हालांकि न्यायिक पुनरावलोकन संविधान संशोधन में विवादास्पद होता है। क्योंकि संविधान में अनुच्छेद 368 के अनुसार, संविधान में संशोधन की शक्ति केवल संसद द्वारा ही दी जा सकती है। हालांकि अनुच्छेद 13 में यह भी कहा गया है कि संसद ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती जिससे कि मौलिक अधिकारों पर असर पड़े। इससे यह साबित होता है कि संविधान में क्या वाकई कोई संशोधन किया जा सकता है ? क्या ऐसा कोई संशोधन जो मौलिक अधिकारों से संबंधित हो वह असंवैधानिक माना जायेगा? यह विवाद भारत की आजादी के दो दशक तक चलता रहा था।

प्रारंभ में, न्यायालय ने संविधान संशोधन को कानून नहीं माना था क्योंकि, यह अनुच्छेद 13 के अनुरूप नहीं था। लेकिन 1967 में, गोलकनाथ केस के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि संविधान संशोधन भी एक कानून है यदि वह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न करे, यदि ऐसा करे तो वह असंवैधानिक माना जायेगा। पहले के सभी संशोधन जो संपत्ति के मौलिक अधिकार से संबंधित थे सभी असंवैधानिक घोषित किये गये। यदि कोई कानून लंबे समय तक मान्य रहे तो यह वैध माना जाता है क्योंकि इसका असर समाज पर पड़ता है। यदि पुराने सभी संशोधन वैध माने जाते हैं तो उन सबको लागू किया जाता है। लेकिन इससे राजनीतिक एंव आर्थिक उथल–पुथल की संभावना बनी रहती है। लेकिन ऐसी स्थिति से निपटने के लिए पुराने सभी कानूनों को सही माना गया। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि भविष्य में जो भी संशोधन हो यदि मौलिक अधिकारों के विरूद्ध हो तो वे मान्य नहीं होंगे। न्यायालय ने यह भी माना कि अनुच्छेद 368 को संविधान को पूरी तरह से संशोधन का अधिकार नहीं है बल्कि यह मात्र संशोधन की एक प्रक्रिया है। इस व्याख्या ने भी मुश्किल पैदा कर दी। यदि किसी प्रावधान को संशोधन करने की जरूरत हो तो, यह मुश्किल होगा क्योंकि इससे मौलिक अधिकारों पर प्रभाव पड़ सकता है।

1970 में, जब सर्वोच्च न्यायालय ने इंदिरा गाँधी के लोक–लुभावन वादों को विफल किया, जैसा कि प्रीवी पर्स का खात्मा, तथा बैंकों का राष्ट्रीयकरण, तब प्रधानमंत्री ने संसद की सर्वोच्चता को प्रमुख माना। 1971 में उन्हें दो तिहाई बहुमत प्राप्त हुआ तब उसने इसे सही माना था। 1972 में, संसद ने 25 वाँ संविधान संशोधन पारित किया जिसमें विधायिका को यह अनुमति दी कि वह मौलिक अधिकारों पर भी अतिक्रमण कर सकती है। यदि यह राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावित करें। कोई भी न्यायालय ऐसे प्रश्नों की अनुमति नहीं दे सकता। 28 वें संशोधन के अंतर्गत भारतीय राज्यों के पूर्व शासक जिनको विशेष सुविधा प्राप्त थी उनके प्रीवी पर्स को खत्म कर दिया गया था।

इन संशोधनों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी। 1973 में यह केशवानंद भारती केस के नाम से प्रचलित हुआ था। इसे मौलिक अधिकारों से संबंधित केस भी माना जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि संसद मौलिक अधिकारों में भी संशोधन कर सकती है लेकिन यह संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती है। ''मूल ढाँचे'' के अंतर्गत, संविधान संशोधन तभी तक मान्य होगा जब तक कि यह 'मूल ढाँचे' को प्रभावित नहीं करे। 'मूल ढाँचे में परिवर्तन' का सिद्धांत ही सर्वोच्च न्यायालय की वास्तविक न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति मानी जाती है।

इस सिद्धांत के बाद संविधान में संशोधन करते वक्त काफी सावधानी बरती गयी थी। किसी व्यक्ति के संसद में चुने जाने को भी चुनौती दी गयी थी जो कि प्रधानमंत्री का पद

ग्रहण करता हो। 39 वें संशोधन ने एक अलग प्रक्रिया का प्रावधान किया। ऐसे किसी भी मसले को संसद की विशेष समिति के अंतर्गत चुनौती दी जा सकती है, लेकिन यह वैद्य माना तभी जायेगा जब इस पर कोई प्रश्न नहीं पूछेगा। सर्वोच्च न्यायालय इस संशोधन को अवैद्य माना क्योंकि यह संविधान के मूल ढाँचे के विपरीत था। कोर्ट ने यह दलील दी कि मुक्त और निष्पक्ष चुनाव लोकतंत्र का अहम भाग है। चुनाव का सही परीक्षण किये बिना किसी व्यक्ति को सही मान लेना, ठीक नहीं है, यह संविधान के मूल लोकतांत्रिक आदर्शों के खिलाफ है। बाद के एक और मामले में जिसे हम मिनरवा मिल केस के नाम से जानते हैं, सर्वोच्च न्यायालय एक कदम आगे बढ़ा। 1976 के 42 वें संविधान संशोधन के तहत् अनुच्छेद 368 में एक भाग जोड़ा गया जिसमें संविधान संशोधन को न्यायिक पुनरावलोकन से दूर रखा गया। कोर्ट ने यह माना कि यह न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धांत के विपरीत है जो कि संविधान की प्रमुख विशेषता है।

1970 से न्यायपालिका ने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए बड़ी भूमिका निभाई है। यह मुख्य रूप से न्यायिक सक्रियता के रूप में जाना जाता है। सर्वोच्च न्यायाललय ने वंचित वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए कदम उठाये जो कि गरीबी, सामाजिक भेदभाव तथा जागरूकता की कमी के कारण अपने अधिकारों की माँग के लिए कोर्ट तक पहुँच नहीं पाते है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ''सुने जाने के अधिकार'' वाले सिद्धांत को कम किया जो कि कोर्ट को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को सीमित करता है। ''सुने जाने के अधिकार'' के सिद्धांत के माध्यम से कोई भी व्यक्ति कोर्ट तक जा सकता है यदि उसे किसी प्रशासनिक कार्यवाही से ऐसा लगे कि उसे अपने अधिकार देने से इनकार किया जा रहा हो। 1979 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह सुनने का निर्णय लिया कि ऐसे किसी भी केस में वह पीड़ित व्यक्ति की बजाय उसके पक्ष में अन्य व्यक्ति को सुनेगा जो कि इस केस में जनहित में लाया जाता है।

1982 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसला सुनाया जो निर्माण मजदूरों के अधिकारों से संबंधित था जिसमें उसने लोगों को अपने जनतांत्रिक अधिकार प्रदान किये। इसे हम जनहित याचिका का अधिकार भी कहते हैं। अमेरिका के कोर्ट का उदाहरण देते हुए भारतीय न्यायालय ने भी किसी भी व्यक्ति को जनहित में कोर्ट में जाने का अधिकार है। वह व्यक्ति एक पत्र के माध्यम से भी कोर्ट जा सकता है। इसने सभी व्यक्तियों को अपने पास आने का अधिकार दिया जनहित के मुद्दों के लिए। अब बड़ी संख्या में कोर्ट में ऐसे केस आ रहे है जिसमें लोगों के अधिकार के अलावा, गरीबों के जीवन–यापन में सुधार तथा पर्यावरण सुरक्षा जैसे मुद्दे भी शामिल होते हैं। इस कारण अब न्यायालय ने गरीबों एवं वंचितों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए कुछ उपाय किये है।

1990 में, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, महिला आयोग, पिछड़ा वर्ग आयोग तथा अनुसूचित जाति एवं जन जाति आयोग की स्थापना की गयी ताकि दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं के अधिकारों की रक्षा की जा सके। इसके अलावा सन् 2000 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का भी गठन किया गया ताकि मौलिक अधिकारों की रक्षा की जा सके। इस आयोग ने पीड़ित व्यक्तियों के मानव अधिकारों के उल्लंघन पर जाँच करने तथा उसे न्याय दिलाने की बात कही। हालांकि इसके पास सजा दिलाने की शक्ति नहीं है लेकिन यह मानव अधिकार के उल्लंघन के खिलाफ़ सरकार को अपनी सिफ़ारिश दे सकता है।

जनहित याचिका के अधिकार को प्रदान करने के पश्चात् कुछ लोगों ने इसे जनतांत्रिक अधिकारों की रक्षा का सबसे बड़ा उपाय माना, और यह अधिकार संसद ने नहीं बल्कि न्यायालय ने दिया है। अब कोर्ट के पास ढेरों जनहित याचिकाऐं आ रही है। इससे यह पता चलता है कि लोगों को अपने अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। लेकिन इससे कोर्ट भी दबाव में है तथा उसके ऊपर और अधिक भाड़ आता जा रहा है।

9.8 न्यायिक सुधार

न्यायपालिका ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए सम्मान अर्जित किया है, लेकिन बड़ी संख्या में केस अभी लटके पड़े हैं इसने न्यायपालिका की प्रतीष्ठा में आँच लगाई तथा यह इसकी सबसे बड़ी कमजोरी भी है। 2010 में अखिल भारतीय न्यायिक सुधार कार्यशाला में मुख्य न्यायाधीश एस. एच. कपाड़िया ने यह इंगित किया कि देश मे करीब एक करोड़ केस पिछले एक साल से अधूरे पड़े हैं। इसका प्रमुख कारण है न्यायपालिका के ढ़ाँचे एवं प्रक्रिया में कहीं कुछ दोष या कमी है। कुछ कारण ऐसे भी हैं जो कि न्यायपालिका के अंदर शक्तियों का दुरूपयोग कर रहे हैं। इससे केस और लंबित होते हैं तथा न्याय दिलाने में भी देरी होती है। न्यायपालिका की एक और कमजोरी है, वह है इसकी बोझिल प्रक्रिया व्यवस्था तथा न्याय की अनिष्ट प्रक्रिया। न्यायिक सुधार के सुझाव सामने आ रहे हैं। ताकि एक नयी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था कायम की जा सके एवं सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सके।

9.9 सारांश

जैसा कि हमने इस इकाई में देखा है भारतीय न्याय व्यवस्था ब्रिटिश काल से ही अस्तित्व में है। 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट 1861 के भारतीय उच्च न्यायालय एक्ट एवं 1935 के अधिनियम को भारतीय न्याय व्यवस्था में मील का पत्थर माना जाता है। संविधान ने भारत में सर्वोच्च न्यायालय को सबसे बड़ा न्यायालय घोषित किया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनाये गये कानून सभी न्यायालयों पर लागू होंगे। चाहे वह उच्च न्यायालय हो या अधीनस्थ न्यायालय।

भारतीय न्यायपालिका मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है, संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता निष्पक्षता एवं समीक्षा के अधिकार को सबसे बड़ा हथियार माना था। न्यायिक समीक्षा एक तकनीक एवं प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विधायिका कार्यपालिका एवं सरकारी एजेन्सियों के कार्यों की समीक्षा की जाती है। वास्तव में ये कार्य संविधान के अनुसार है या नहीं इनकी वैद्यता की जाँच की जाती है। न्यायिक पुनरावलोकन की स्थापना इसलिए की गयी क्योंकि (1) संविधान एक कानूनी मंत्र है, (2) कानून सर्वोपरी है तथा यह संविधान अनुसार होना चाहिए। अब यह पूरी तरह स्थापित हो गया है कि भारत में न्यायिक पुनरावलोकन संविधान की मूल विशेषता या संविधान का मूल ढ़ाँचा है।

9.10 उपयोगी संदर्भ

बसु., दुर्गा दास (*1983) भारत के संविधान पर टिप्पणी*, नई दिल्ली, प्रेन्टिस हॉल।

ऑस्टर्न, ग्रेनविल (1964), *भारत का संविधान,* नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मुखर्जी, हिरेन (1978), पोरट्रेट ऑफ पार्लियामेंट, विकास, नई दिल्ली

चौबे, सिवानी (2009), भारत के संविधान का निर्माण एवं कार्यप्रणाली, नई दिल्ली, एन.बी. टी.।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए किसी व्यक्ति को भारत का नागरिक होना चाहिए, उसे पाँच वर्ष का उच्च न्यायालय में कार्य करने का अनुभव होना चाहिए तथा 10 वर्ष तक किसी न्यायालय में वकालत का अनुभव भी होना चाहिए।

2) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को महाभियोग की प्रक्रिया से हटाया जा सकता है। इस प्रक्रिया में संसद द्वारा एक प्रस्ताव लाया जाता है जिस पर दो–तिहाई बहुमत से सदस्य इसे पास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1) सर्वोच्च न्यायालय का प्रारंभिक क्षेत्राधिकार है उसका मौलिक अधिकारों की रक्षा करना। यह विभिन्न राज्यों के बीच विवादों की भी सुनवायी करता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY